

वीणा जैन

जन्म सरदारशहर (राजस्थान)

जन्म-तिथि 13 फरवरी, 1946

शिक्षा प्रभाकर (हिन्दी)

लखन
हिन्दी म प्रकाशित कुछ प्रमुख पत्र-पत्रिव म कविताआ का निरन्तर प्रकाशन और अगणित पाठक-पाठिकाआ द्वारा प्रशसित

प्रेरणा
भावा की घनीभूत अनुभूतिया के साय म प्रतिश्रुत अनुश्रुत स बहुश्रुत की आर

अभिरुचि
तेलचित्र चित्रण विशाखापट्टनम म एकल प्रदर्शनी।

आवरण चित्र भी स्वय निर्मित

सम्मान
डॉ अम्बेडर फैलोशिप सम्मान 1999 के लिये चयन

तरणि-तरणी

वीणा जैन

तरणि-तरणी
लेखिका वीणा जैन

प्रथम सस्करण, 1999

प्रकाशक
प्रगति प्रकाशन
7 उषा कॉलोनी
मालवीय नगर जयपुर-302 017
दूरभाष 525286

सम्पादक
श्रीकृष्ण शर्मा
जयपुर

चित्राकन
सत्यदेव सत्यार्थी
जयपुर

प्रथम एव अन्तिम आवरण चित्र
वीणा जैन (पींचा)

मूल्य
100 रुपये

मुद्रक
जयपुर प्रिण्टर्स प्रा लि
एम आई रोड, जयपुर



समर्पण

जब
बहुत अकेली होती हूँ
माँ, याद तुम्हारी आती हे
तू, नहीं
अब
इस दुनिया मे
ये अहसास
हवाये दे जाती है,
और मेरी ये तनहाई,
मेर आँसू
मेरी खुशियाँ
अक्षर-अक्षर, गूँथ-गूँथ
समर्पित
मुझे कर जाती है।

कलकत्ता
22 जुलाई, 1999

वीणा जैन



परिचिति

कल्याणमल लोढा

वीणा जेन से मेरा व्यक्तिगत परिचय अनेक वर्ष से है। वे सद्‌गृहिणी है और अत्यन्त साम्य व सरल व्यक्तित्व की भारतीय महिला है। इधर मने उनक एक नए रूप आर स्वभाव का प्रमाण पाया। व कवयित्री भी हे ओर उनकी यह सारस्वत प्रतिभा का प्रथम पुष्प 'तरणि-तरणी' मेरे सम्मुख है। यो गत कई वर्ष से उनकी कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाआ मे प्रकाशित होती रही हैं और मैंने उन्हे पढकर पाया कि इनकी रचनाधर्मिता का मूल स्रोत भावा की घनीभूत अनुभूतिया मे विद्यमान है और य अनुभूतियाँ ही सरल अभिव्यक्ति से कविताएँ बन जाती हैं।

वीणा जैन की मान्यता है कि आज भी मनुष्य के हृदय मे करुणा और मोह है। वह कितना ही पशु बने पर उसका अन्तर, उसकी आत्मा हमेशा उसे पशु बनने से रोकती है। मनुष्यत्व की यह धारणा ही, वस्तुत जीवन की, जिजीविषा का शब्दाथ मे परिवर्तित होती ह। यह कवल भावावेश नहीं होता वरन् वह जीवन की गहराइया से परिपोषित होकर प्रकृति क साथ सहिता बनकर जडजगत् को समायोजित करता है। इसके साथ ही युग-परिवेश ओर यथार्थ का अनुबन्धन कविता को वायवीय न बनाकर अपने अन्त प्रवाह मे मन, प्राण व हृदय को छूता हे। यही व्यक्ति के अन्तर्मन की विराटता है और उसकी सकल्पना।

वीणा जैन कहती हे
महलो के जगमगाते कँगूरो मे,
दीयो की लम्बी कतारा मे
एक दीया उस घर उठाकर उनके नाम लिख द,
जो जीते है, उम्र भर, अभावो मे

मरते है, जो अँधेरा म,

चलो उन्ह भी उनका हक दिला द।

अनुभूतिया की यह प्रवहमानता व्यक्तिनिष्ठ न होकर व्यापकता का प्रमाण है। 'तरणि-तरणी की', 'अपनी कही' म वीणा जैन ने अपनी रचनाधर्मिता और उसकी प्रक्रिया को रूपायित किया है। कलकत्ता के व्यस्त सकुल आर यात्रिक जीवन स उन्ह विशाखापट्टनम म "उस ठाठे मारत समन्दर के साथ मेरे उद्वेलित भाव अपनापन महसूस करने लगे और मन का भाव-पक्षी उडने का आतुर हा उठा। उसी आतुरता को गिने-चुने शब्दा का वाना पहनाने की कोशिश हैं ये शब्दचित्र।"

वीणा जन चित्रकार भी हे - उनके चित्र रगा और तूलिका से भाव-सोन्दर्य के उत्कृष्ट उदाहरण है क्याकि उनम चित्रकार की दृष्टि स्वत स्पष्ट हे। कवि का तृतीय नेत्र देशकाल म समाहित होकर भी उनके परे देखता हे और इसे ही अन्त दृष्टि कहा गया है। कवयित्री ने 'शब्दचित्र' कहा है - और इसी से प्रत्येक कविता की प्रामाणिकता ओर उसकी भावभूमि को रेखाचित्रो से ओर प्रभावी बनाया है। कलकत्ता और विशाखापट्टनम के जीवन ने उन्हे युग सापेक्ष अनुभूतियाँ दी तो प्रकृति के अनिन्द्य सौन्दर्य से अभिभूत किया। वीणा जैन का कवयित्री-कर्म इसी का समायोजन है। 'कविता क्या है' म वे कहती ह

"भावुक हृदय से बहता,

निर्झर सा निर्बन्ध गान हे,

मेरे भारी मन को,

हल्की सी प्यार की थाप है,

कविता यही है - बस यही हे।"

टी एस इलियट ने इसी से कविता को 'व्यक्तित्व से उन्मुक्त प्रवाह' कहा हे और उसे वस्तुगत यथार्थ। ओब्जेक्टिव रियेलिटी। 'तरणि-तरणी' का यही रूप है। वह एक ओर कवयित्री के मन से स्वत स्फूर्त हे तो दूसरी ओर प्रकृति से जुडकर अपनी व्याप्ति को और रसमय बना देता हे। सोन्दर्य

विषयक उन्नयन उस 'सोन्दर्य' की ओर प्रवाहित होता है। भावात्मकता और बाद्धिकता अपनी समसगति स लोकात्तरभूमिका मे पहुँच जाता ह आर लोकोत्तर स्मृति बन जाता है। लोगिनस ने जिस उदात्तता की विवेचना की है, उसका भी यही आधार है। वह कहता है, There can be true sublimity when the effect is not sustained then and the act of perusal when it makes a lasting hold on the memory then we have to be sure that we have lighted on the true sublimity

वीणा जैन की काव्यानुभूति इसी औचित्य की ओर अभिमुख होती है। इस सग्रह की एक कविता है "बचैन मन"। इस कविता मे कवयित्री कहती है

"घन उमड-घुमड कर,
बरसा देते अपने मन की बैचेनी,
सागर भर देता,
उठती मचलती लहरो मे,
मन का सारा बोझ,
फूलो पर निखर जाता है।
कलिया के मन का राज,
इन्द्रधनुप के रगो मे,
आसमान भी कह देता है अपने मन की बात।"

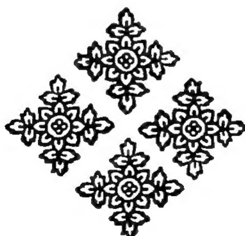
"अपने मन की बात" का कहना, सुनना और समझना ही कविता के 'असाधारण सत्य' का दीप्त करता है आर यह असाधारण सत्य ही कविता का मर्म है। वीणा जैन की एक और विशेषता है शब्द प्रयोग की सार्थकता। कविता का अभिधेय अन्तत शब्दा पर ही निर्भर रहता ह, शब्द ही अर्थ क सार्थवाह हे। उनका अपना व्यक्तित्व हाता है। कविता म शब्द का व्यक्तित्व वाक्विलासमय न होकर अर्थसौष्ठव की आधारभूमि होती है। प्रस्तुत सग्रह

की अनेक कविताएँ इसी सौष्ठव का प्रतिमान है। एक अज्ञात पीड़ा व अभाव कवि मन को आहत-व्याहत करता है और वह बार-बार अपने से पूछता है।

'सारी सिसृभा इन सपनों के मध्य भी कवयित्री मन्दिर के घण्टा-सा प्यार को यजन देता है। वीणा जैन की काव्य-यात्रा अविराम गंगा-सी बहती रहे और उसकी व्याप्ति व उसका विस्तार गहन अनुभूतिओं से पोषित होकर अपनी अन्त बाध्य समसगति में प्रकृति के साथ युग से जुड़ती रहे यही मेरी आकांक्षा है। प्रस्तुत काव्य संग्रह मुझे यह विश्वास दिलाता है। कविता पलायन नहीं अपने में आत्मविलयन है और यह विलयन एकांगी नहीं होता वरन् नदी की भाँति सागर में संतति होकर अपने अस्तित्व को और व्यापक बनाता है जिसके क्षितिज नित नए सतरंगी सौन्दर्य से अभिव्यक्त रहते हैं। मैं 'तरणि-तरणी' का इसी से स्वागत करता हूँ। वे अपने मन की बेचैनी को सदैव पन्नों पर लिखती रहें।

जनवरी 1, 1999

2-ए, देशप्रिय पार्क (पूर्व)
कलकत्ता-700 029



स्वर्णोज्ज्वल प्रत्यूष का प्रोज्ज्वल काव्य

श्रीकृष्ण शर्मा

साहित्यकार, कलाकार अपनी साधना के प्रबल पर निराकार सत्ता का विवेचन विभिन्न कलारूपो मे उन्मीलित-समुन्मीलित करते हैं। कलारूपा का सुसम्पृक्त एव सुसश्लिष्ट तथा घनीभृत छन्दबद्ध, और लयबद्ध शाब्दिक कलेवर ही काव्य साहित्य कहलाता है और जो छन्दरहित तथा लयविहीन हो किन्तु, सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् की प्राप्ति म सहायक हो वह साहित्य कहलाता है। साहित्य, कला आर दर्शन के बीच, लगभग लगभग ऐसे ही त्रिकोणीय सम्बन्ध है, जिसे हम सस्कृति कहते हे। साहित्यिक चिन्तन मनोलोक मे अकुरित ओर भावलोक मे प्रस्फुटित एव पल्लवित हाता हे, जो निर्झरणी के माध्यम से लिपिबद्ध होता हुआ पाठकीय सम्पदा बनता है। यही चिन्तन अभिव्यक्ति के लिए विविध साहित्यरूपा क माध्यम स अलग अलग रूप-स्वरूप और आकार ग्रहण करता हे। शब्द चिन्तन, मनन, अध्ययन, अध्यापन और स्मरण की निराकार सत्ता ओर साहित्य के विविध कलात्मक रूपो के विविध विवर्तो को जब शब्दा म विस्ताराकित एव समाहित करन लगता हैं तब उसका परिणाम यह होता है कि कभी साहित्य की चेतना मानवीय ऊर्जा को सम्बलित करती हे और कभी मानवीय गरिमा साहित्य की चेतना को चेतन्य एव जीवन्त अनुभव का रूपाकार पदान करती है।

साहित्य सूत्र को समझने के लिए काव्य, काव्य के लिए सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी भाषा आदि ओर काव्यशास्त्र, छन्दशास्त्र साहित्यशास्त्र का ज्ञान भी जरूरी माना गया है। साहित्य की दृष्टि, पूर्णता और समग्रता पर केन्द्रित है ओर वह साहित्यकार को अविभाज्य आध्यात्मिक अनुभूति तक ले जाती है। विश्वकवि कालिदास ने हसपदिका की स्वर साधना को वर्ण परिचय ही कहा है। 'वण' साहित्यलोक म 'अक्षर' कहलाता हे सगीत मे उसे 'म्वर' कहत है आर चित्रकला-ससार मे वह 'रग' ह। इस प्रकार 'वर्ण'

अक्षर भी है, स्वर भी हे और रग भी हे जो साहित्य, सगीत, चित्रकलाआ क अद्वत एकत्व को प्रभावित एव पमाणित करता ह। विश्वकवि कालिदास साहित्याकन की प्रक्रिया म साहित्यकार की तन्मयता, तल्लीनता, एकाग्रता को तत्परता से समाधि की अवस्था तक ले जाते है। समाधि शास्त्रीय शब्द हे भारतीय वाङ्मय की अस्मिता, चेतना और तात्त्विक एकरूपता, आध्यात्मिक उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त करती है। आचार्य मम्मट ने काव्य प्रणयन के प्रयोजनार्थ कहा

"काव्य यशसे अर्थकृते, व्यवहारविदे, सद्य परनिर्वत्तये, कान्तासम्मितपोउपदेशयुते"

अर्थात् काव्य की रचना यश प्राप्ति के लिए, अर्थ प्राप्ति के लिए, परस्पर सवाद व्यवहार के लिए, अशिव के नाश के लिए, परम-आनन्द की प्राप्ति के लिए ओर कान्ता क उपदेश की तरह हे किन्तु आज न तो महाकवि भारवि हे जो 'किरातार्जुनियम' जैसी कृति हमे दे सके आर न ही महाकवि माघ ही दृष्टिगोचर प्रतीत होते है जो हमे 'शिशुपाल वध' जेसी अद्‌भुत रचना दे सके आर न ही महाकवि श्री हर्प हमारे मध्य हे जो 'नलदमयन्ती' जैसे ग्रन्थ का प्रणयन कर सक तथापि हिन्दी कविता के माध्यम से जनजागरण का कार्य हो रहा है और अहर्निश हो रहा है। मानवीय उदात्त भावनाओ और आकाक्षाओ से सम्प्रक्त कवि काव्य सर्जन कर रह ह। ढाँणी-ढाँणी गली-गली नगर-नगर, उपनगर-उपनगर, महानगर-महानगर काव्य सर्जन हा रहा हे। इससे निश्चय ही कविता की देह आन्दालित हुई और भूखी पीढी, नगी पीढी श्मशानी पीढी का झण्डा लिए हुए तुकान्त कविता, अतुकान्त कविता यथार्थवादी कविता ठोस कविता, प्रगतिशील कविता जनवादी कविता शाश्वत कविता, हास्य-व्यग्य का बाना पहनकर चुटकलेबाजी के रूप मे प्रकट होती रही। गीत और कविता को कवि सम्मलना क मच से धकियाया जा रहा ह पाठ्यपुस्तका स उस वनवासिनी बनाया जा रहा है पर कविता कविता है जो अनवरत, अहर्निश लिखती ही चली जा रही हे। जितनी जमीन वह तोडकर 'शब्द' को 'मत्र' बना रही है अभिधा लक्षणा आर व्यञ्जना की यात्रा तय कर प्रतिध्वनि, रणतकार मे रूपान्तरित हो जाती है वह कविता का रूप ग्रहण कर रही ह अर्थात् 'शब्द' जब कविता के

माध्यम से 'ब्रह्म' का रूप ग्रहण करता है तो कविता जन-जन के कण्ठ मे वास करने लगती है, जन-जन को परम आल्हाद् की स्थिति मे पहुँचाती है जो वस्तुत उसका प्रेय भी है और श्रेय भी।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, प जयशकर प्रसाद, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, राष्ट्रकवि रामधारीसिह दिनकर, राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त एव महीयसी महादेवी वर्मा की टक्कर क कवि अब काव्यक्षितिज पर कहाँ दृष्टिगोचर होते है?

और अब डॉ हरिवशराय 'बच्चन', डॉ शिवमगल सिह 'सुमन', गोपालदास नीरज, स ही वात्स्यायन 'अज्ञेय', रमानाथ अवस्थी, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', बलवीरसिह रग, गोपालसिह नैपाली, नरेश मेहता, केदारनाथ अग्रवाल के बाद नयी पीढी म काव्य का वह उत्स कहाँ है?

प्रोफेसर नन्द चतुर्वेदी के बाद कौन?

हरीश भादानी के बाद कौन??

रामनाथ कमलाकर, कर्पूरचन्द कुलिश, डॉ हरिराम आचार्य, डॉ मनोहर प्रभाकर तथा डॉ ताराप्रकाश जोशी के बाद कौन??? जैसे जलते और उबलते प्रश्न उठ रहे ह, अत नयी पीढी को काव्य के प्रति आकर्षित, प्रेरित और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

तीस-पैंतीस साल पहले कर्पूरचन्द कुलिश की "मत छेडो उपे! यह सुहाग की रात बडी हो जाने दो। मत हँसो जागरण का रहस्य खुल जाएगा, नस-नस म लज्जा का अबीर घुल जाएगा, मत मारो पिचकारी सोने के पानी की, यह सपनो का सुरमई रग घुल जाएगा।"

रामनाथ कमलाकर की "वेद होकर स्वय बाँचता पोथियाँ, देवता हूँ मगर अर्चना कर रहा हूँ सॉस ली तो ऋचाएँ जन्मने लगीं, मन हँसा तो बना चन्द्रमा रस कलश, प्राण बन कर समाया हुआ सब जगह, मै मगन हूँ, मगर कल्पना कर रहा हूँ।"

डॉ मनोहर प्रभाकर की कविता "दिन भले दो-चार की हो जिन्दगी, उम्र भर त्यौहार-सी हो जिन्दगी।" तथा

डॉ तारा प्रकाश जोशी की कविता ''प्राणो मे यदि पाहुन होगे तो, नयन बिना भी दर्शन हागे। भीतर यदि वृन्दावन हो तो, पॉव बिना भी नर्तन होगे।'' जैसी कविताएँ कहाँ हे ? वीणा जेन का काव्य सग्रह 'तरणि-तरणी' मे सूर्य का तेज कुछ अधिक हे। जबकि जीवन के सफर को नाकायन के माध्यम से पार लगाने का भाव प्रबल है। सोचता हूँ इन रचनाओ म जो तारुण्य है उसे दृष्टिपथ म रखते हुए यह 'तरणि-तरणी-तरुणी' होता तो ज्यादा अच्छा होता।

वीणा जेन की कृति 'तरणि-तरणी' का स्वर्णोज्ज्वल काव्य प्रत्यूष प्रोज्ज्वल जीवनरस का सचरण करता प्रतीत होता है। दृष्टव्य है 'उन्मुक्त गगन मे' शीर्षक कविता

'चाँदी का घर
सोने की दीवारें
ओर चुगने को
चुग्गा था मोतियो का, फिर भी
मायूसी मे बैठे रहते
दिन, आ रात मन मारे
दो पञ्छी प्यारे प्यारे।'

सामाजिक बन्धन से मुक्तिकामना का एक कालबाह्य अनुभव है जो एशो-ए-आराम से रहने आर खान-पीने की समृद्ध सुख-सुविधा के उपरान्त भी उन्मुक्त गगन मे उडने की लालमा से सम्प्रक्त है। ऐसा ही एक भाव 'दो डग' शीर्षक से कविता म भी हे कि थोडा सा आसमान चाहा था जहाँ उड सके पॉखो पर चढकर।

'म क्या लिखूँ ? क्या गाऊँ म' वीणा जन कहती ह

''मन भुवन म,
शब्द अक्षर,
भाव ओर कल्पनाएँ,
सुरो की मधुर रागिनी
सब रेशम से उलझे है
म क्या लिखूँ, क्या गाऊँ।''

वीणा जैन द्वन्द्व प्रधान ससार और अन्तर्मन मे आलोडित विलोडित मन स्थिति को भी व्यक्त करती ह क्योकि मन आगर मे नदियाँ सागर, झरने, फूलो का मोन निमत्रण सभी कुछ हे, पर चयन करना ओर फिर उसे वाणी देने का काम नि सन्देह गुरुतर हे।

'धागे धागे सपने' कविता म वे लम्बे अरसे से बुनती रहती ह पर काँच क टुकडे जैस टूट-टूट कर बिखरे हुए सपने अपने बाह्य और अन्त जगत् का कैसा विचित्र गुम्फन ह कि जिसम देहिक रूप से बुनने के अन्तर को मानस मे बुने सपना से तादात्म्य स्थापित कर एकाकार रूप दे दिया है।

'मन के कोने मे' शीर्षक कविता म वही हो रहा हे जैसा कि वयसन्धि पर सर्वत्र होता है एक हूक सी उठती रहती है, एक नए उत्साह, उमग और उल्लास का सचार होने लगता है जेसे अन्दर कोमल किसलय कुसुमित हो रहा हो पर फिर भी जीवन के कटु अनुभव यही प्रकट करते ह कि जेसे कागजी खूशबू का शुरू-शुरु मे कभी अपना एक अलग ही आनन्द होता है पर वह समय क साथ साथ धीरे-धीरे समाप्त होता जाता हे, वह कभी स्थायी नही रहता, यथा

''एक खूबसूरत खयाल,
जो बसा था
मेरे मन मे
जाने कब से
खूशबू जैसा
आज
जब, होश म आया मन
तो पाया - खुशबू ही नही थी,
वहाँ था
बस - एक रगीन फूल कागज जेसा
उसे ही सँजोकर रख दिया है
मन के किसी कोने म।''

'चोरी हो गए सपने' शीर्षक स भी कविता से भी यही सिद्ध होता है कि जैस यौवन म सपने कुछ ज्यादा ही दिखते है पर कभी-कभी वे आकार लेने से पहले ही चुरा लिये जाते ह। 'धूप तलाशती म' शीर्षक से कविता मे वे कहती ह -

"चातक सा मन खाज रहा है
एक धूप का शतदल -
बीच गगन म
निकला ही था। फिर -
ज्योतिपुञ्ज सुनहरा कि
घिर घिर आये गहराये बादल
देख सखी
ये नीर भरे कजरारे बादल।"

वस्तुत यही वह तलाश है जिसके माध्यम से अप्राप्त को प्राप्त करने की चाह बनी रहती है। प्रकृति के इन रहस्या को किसने जाना हे कि पत्तो पर हजारो रग, हजारा रूप, अनुपम छटाएँ कैसे कैसे उभर आती है? खुशबू से महकते अगणित फूल कैसे डाल-डाल पर खिल जाते हे। यह बाल सुलभ भोलापन भी हे और जिज्ञासाएँ भी। यही जिज्ञासा "उजाले" मे भी है कि कहाँ गए मेरे घर के सारे उजाले, चेहरो से हँसी कहाँ गायब हो गयी ह। पीडाओ का अपना अपनत्व होता हे वे मन्दाकिनी-सी बहती हे, लहर-लहर बलखाती ह उछलती हे कूदती हे, लचकती ह, मटकती हे, सिर पटखती है आर फिर बारिश की बूँदो सी झूमझूम कर बरस जाती ह। टूटते किनारे, छूटते सहारे, पोछ लिये आँसू क्याकि न जाने कितन सवाल कर रहे थे - बेहाल, पर आ गया जब मोह ममता का ख्याल, तो फिर सुख-दु ख के बीच उलझा-उलझा मन हँसता रोता और रोता हँसता रहता ह। चाँद की परछाई चाँदनी मे डूबा हुआ मुग्ध चाँद, लहरो के आइन मे अपनी ही परछाई देख ऐसे लगता है जैसे सोने के देश मे बरस रही है - चाँदी। इसी का नाम है जिन्दगी क्योकि वह न जाने कितने-कितने रग बदलती है, कितने-कितने रूप बदलती है कभी चम्पा कभी चमेली जेसे फूला-सी महकती है, कभी वह गुलाब जैसे काँटो के दश छिपाये रहती है कभी सितारो-सी दमकती

हे, चमकती ह, महकती ह ता कभी हिरणी जैसे कुलाँचे भरती हे, कभी आवारा बनजारे सी भटकती ह ओर अनदेखी, अनचीन्ही राहा पर चल पडती है आर फिर सुनती ह दरखता की कानाफूँसी, कि इन दिनो बाग-बगीचा क चमन मे, शहर मे आया है पतझड, सूखे पत्ते सरसराती हवाओ के साथ उडकर चल देते ह आर बचे-खुच पत्ते करते रहते हे बसन्त का इन्तजार। सपना म सजाते रहते है सितारा को, चाँद को, सूरज को। अपने आप मे खोई हुई जिन्दगी न वक्त की दस्तक सुन पाती है न अपने मन की बात बस अतीत की गुफाआ मे सपना के चिराग जलाती रहती ह। हवा भी इतनी बेरहम हो जाती है कि मरुस्थल के विस्तार पर बमुश्किल उकेर कदमो के चिन्हा को एक ही झोके म नेस्तनाबूद कर देती, सदा-सदा के लिए मिटा देती है नामानिशान ओर फिर मन नफरत के धुएँ म घुटता रहता है, भाई चारे के रिश्ता मे लुटता-पिटता रहता ह। ढूँढता है चाहत के रिश्तो को, अकेलेपन का दर्द लिए, जगह-जगह की धूल फाँकता है, सात समुन्दर पार जाकर आकाश की उच्चतम ऊँचाइया मे नक्षत्रो का आलिगन करना चाहता है पर बेचैन, आकुल-व्याकुल मन क पँख पखेरू थक जाते है और परवाज अधूरी ही रह जाती है सपने बिखर जाते है ओर जब टूटे सपनो की किरच चुभती है ता कतरा-कतरा लहू निकलता है फिर जहाँ से मुखमण्डल प्रकाशित होता हे वहीं ठहर जाता हे अपना मामूली-सा दु ख लिये और उसे वह पहाड सा भारी बताता है।

'यह केसा बचपन' शीर्षक कविता मे बालश्रमिको के शोषण का उनकी भूख का कारुणिक चित्रण भी दृष्टव्य हे

''सर्द रात मे
धूलधूसरित
कचर का डिब्बा सा
बच्चा,
भूख से कुम्हलायी थी -
कमल-सी आँखे,
जूठन के खातिर
प्लास्टिक का थेला लिए हाथ मे
मासूम सा बच्चा''

'बचैन मन' शीर्षक कविता म जितना बचैनी है वह शब्दा की पकड से छूटती चली जाती ह क्याकि 'मन' का ता स्वभाव ही है, चचलता है, उसका काम ही ह बचनी म रमना यथा -

''म । धन नहीं हूँ, सागर नहीं हूँ
मुझम कलिया जैसा हुनर नहा
आर आसमान सा विस्तार नहीं,
म ।
शब्दा का भण्डार नही
मुझे छन्दा की सीमा ज्ञात नहीं
फिर तुम्हीं कहा मैं कस लिखूँ
अपन मन की बचनी।''

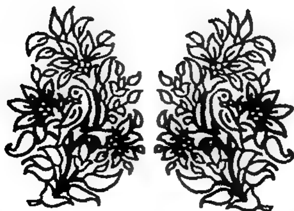
'प्यार ही प्रभु ह' म प्यार का कितना उदात्त भाव मण्डित किया है, कितनी पवित्रता दी है वीणा जैन न कि उसे अहर्निश सुनन का मन करता ह दर्शनीय है

''छुपा कर रखते हा क्यो
मन की घाटिया म
प्यार को?
छलकने दो
शोर मचाती नदिया सा
प्यार को -
आढ रहा है, क्या
ये रुखापन
प्यार म ही प्रभु ह
मन्दिर की घन्टियो सा
बजने दो प्यार को।''

'तरणि-तरणी' के माध्यम से वीणा जैन की काव्य यात्रा के पहले पडाव म जीवन ओर जगत् अपन मन के बाहर और भीतर का द्वन्द्व आर अन्तर्द्वन्द्व स्वप्न मञ्जिल अकेलापन, आँसू, आकाश सागर फूल क माध्यम से

अभिव्यक्त हुआ है। तृप्ति और अतृप्ति के मध्य झूलती आकाक्षाओ, कामनाओ और लालसाओ को जिस सहजता, सरलता, सुगमता से वीणा जैन ने वाणी दी हे उससे उनकी कविता मे शब्द को ब्रह्म बनाने की तत्परता, तल्लीनता और तन्मयता उजागर होती ह, जो स्वाभाविक ही है। सामन्ती परिवेश का छाडकर परिवार और समाज के ऊँचे-ऊँचे दुर्गो और प्रासादो की प्राचीरो को लाँघ कर जब कोई महिला-मन, मुक्ति की तलाश म मीराँबाई की तरह चल पडता है तो उसे सदैव स्मरण रहती है मीराँ वाणी 'भगत देख राजी भई, जगत् देख राई' ज्ञान का पहला सोपान ह जिज्ञासा द्वन्द्व-अन्तर्द्वन्द्व, जो परिस्थितियो के साक्षात्कार से मुमुक्षा के दर्शन मे रूपान्तरित होता जाता हे। 'तरणि-तरणी' आनन्द से परमानन्द, परमानन्द स परिपूर्णानन्द, परिपूर्णानन्द से सर्वदानन्द सर्वदानन्द से सच्चिदानन्द सच्चिदानन्द से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का प्रयास हे। यही इसका वैलक्षण्य् है और वैचित्र्य भी। यही इसका पेय भी है और श्रेय भी। विश्वास है कि काव्य जगत् मे 'तरणि-तरणी' का हार्दिक स्वागत होगा।

अध्यक्ष, 'शब्द ससार'
'गीताजलि', 26 मगल मार्ग,
बापूनगर
जयपुर-302 015





अपनी कही

वीणा जन

मन की अतल गहराइयो मे भटकनवाल भाव पञ्छी को जब मिल जाता है मुक्त गगन पख पसारने को अठखलियाँ करती उन्मुक्त सागर की उत्ताल लहरें, छेड देती ह हृदय-वीणा के तार, खुली वादियाँ आर मोहक फूला की महक कर देती है मत्रमुग्ध, पहाडो की ऊँचाइयाँ देने लगती है मौन निमत्रण, नदिया और झरनो का कल-कल शब्द तब उसके मान को स्वर प्रदान करने लगत हे आर वह मुखर-मुखर हा उठता है। कभी-कभी यह मधुर करुण ध्वनि काव्य निर्झरणी बन बहने लगती है। फिर, वह जीवन का कोई भी मोड हो या पडाव हो।

मेरी जिन्दगी का वह मोड भी मेरे लिये महत्वपूर्ण हो गया जब मुझे कलकत्ता की व्यस्त जिन्दगी से दूर, दक्षिण भारत के छोटे से, किन्तु खूबसूरत शहर विशाखापट्टनम म रहन का अवसर मिला। वहाँ के व तीन वर्ष वहाँ क मुक्त वातावरण, मनोहारी प्रकृति मे कल पख लगाकर उड गये। पता नही उस ठाठ मारत समन्दर क साथ मेर उद्वलित भाव अपनापन महसूस करने लगे आर मन का भाव पछी उडन को आतुर हा उठा। उसी आतुरता को गिने-चुने शब्दा का बाना पहनाने की कोशिश ही मैने अपने इस शब्द-चित्र तरणि-तरणी मे।

य शब्द-चित्र कविता का कोनसा रूप है, मै नही जानती। मन मे उठे भावा को मैने झरने-सा स्वच्छन्द बहने दिया है। बस, इनको लिखने मे मुझे न लयबद्धता की जरूरत महसूस हुई और न छन्दबद्धता की। इनमे छुपे हुए भाव किसी भावुक हृदय के दर्द को सहला सक तो ये कविताएँ सार्थक हो जायगी।

अन्त म —
कृतज्ञ हूँ
उन सव परिवारजना की
और मित्रा की
जिनकी प्रेरणा म
जिनक प्रयत्न से
य शब्दचित्र
जो उठ —
कविता सग्रह 'तरणि-तरणी' क रूप म -

'दवकुज'
29/10 वालीगज पार्क
कलकत्ता-700 019

14 नवम्बर 1998



किरण

उत्तर माँगते प्रश्न

ये किसने रग फैलाये गगन मे?
किसने फूलो को गध दी?
झरनो को मधुर सगीत दिया
और, सागर को गहराई।

किसने
खिलखिलाहटे भरी वादियो मे?
उछलती-बहती नदियो की
दूर तक फैली शृखलाओ मे
किसने बर्फ बरसाई?

प्यार भरा हृदय मे, किसने और
करुणा की भागीरथी बहाई,
आँखो को अश्रु दिये
अन्तर मे ममता छलकाई।

सुन्दर है, विश्व।
सुन्दरतम मानव जीवन है
किसने भर दी, फिर,
नफरत मन मे?
किसने थोपी,
सरहदो की लडाई?



महावीर बुद्ध गाँधी की
परम पावन धरती पर
किसने दी
मनुज को अनबुझी प्यास?
निर्दोष रक्त बहाने की
क्यो भूल रहे भाई को भाई
क्या बढती जाती
ऊँच-नीच की खाई?

कौन आया
प्यार लूटने?
किसने सस्कृति पर कर्ज चढाया?
भटक रही नव सताने
गुमराह हो रहे खुद लोग पुराने
कौन करेगा भरपाई?
और
कौन है उत्तरदायी?

इच्छाओ की माटी मे

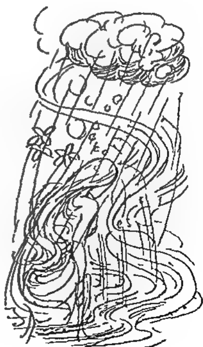
इतनी तो
प्यास न थी, कि
सागर को आना पड़े,
बह चली निर्झरणी पास से
बुझ गई प्यास
एक बूँद-सी।

इच्छाओ की माटी म
बोये थे
कुछ सुमन, कभी
कब चाहा था मगर
मेरा हो
सारा चमन।

कह चुके है
पहले भी तुम्हे, हम!
खिला-खिला सा एक गुलाब
काफी हे,
मेरे मन के सूनेपन मे
महक-महक जाने का।

अब यह मत कह देना
कि, सारा आकाश तुम्हारा है
मने तो
बरसता हुआ
एक बादल चाहा था।

बह चली
निर्झरणी पास मे
बुझ गई प्यास
एक बूँद-सी।



सपने

जिन्दगी मे
उलझने इतनी, फिर भी
मन बुनता है,
धागे-धागे सपने।

जब भी होता तनहा
टूटे सपनो के
घाव सहलाता,
मन ही मन देखा करता,
पर
कल के सुहाने सपने।

सपनो मे उलझी
बीत चली जिन्दगी
प्राणो के तार साँसो मे उलझे
और मन ढूँढता है,
उलझनो मे भी सपने।

कैसा ये मन।
कैसी है उधेडबुन
कौन समझाये?
इतने अपने लगते है?
ये सपने।



तरणी पार उतरणी

ओ नीर भरी बदली,
बिन बरसे मत जाना।

उमड-घुमड कर
रग जमा कर
ऑखो मे सुन्दर सपने सजा कर,
किसी और देश ना जाना।
ओ नीर भरी बदली,
बिन बरसे मत जाना।

उमडेगी सूखी नदिया फिर
मॉझी लेकर आयेगे
तरणी पार उतरणी,
तुम सग हवा के उड न जाना,
ओ नीर भरी बदली
बिन बरसे मत जाना।

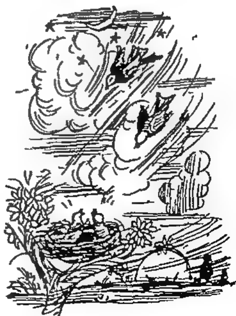
पत्ते झरे झर-झर सारे
बिन अमराई कूके कैसे?
काली कोयल खुश होकर
रिमझिम गीत सुना जाना
ओ नीर भरी बदली,
बिन बरसे मत जाना।

तपता ऑगन बाट जोहे
सावन भादो लेकर आये कब
ठण्डी-ठण्डी फुहारें
तुम बिन बरसे मत जाना
ओ नीर भरी बदली,
बिन बरसे मत जाना।



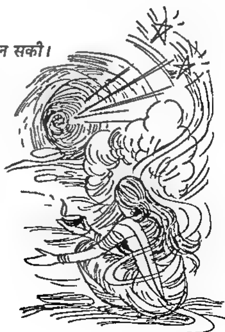
मन से मन की बात

मन। साँझ पडी
घर आजा
दिन का सूरज डूब रहा,
बिखर रही
रक्तिम आभा।
शान्त सुहानी किरणे
फैल उठी, बन
अम्बर की शोभा।
मन। साँझ पडी घर आजा,
थके पक्षियो का
शोर उठा
उड चले जिधर है बसेरा।
आकुल मन के
कलरव से
गूँज उठा
अम्बर का घेरा,
मन, साँझ पडी घर आजा।
गोधूलि की बेला
रजनी का इन्तजार है
झाँक रहा है
चन्द्रमा
नन्हे-नन्हे तारा के सग,
मुसकराता रूप देख कर,
रह गया
अम्बर भी चकित
मन। साँझ पडी घर आजा।



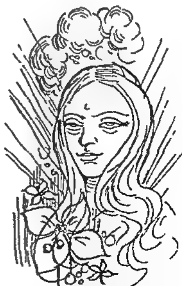
दस्तक

मै।
अपनी ही दुनिया मे
इस कदर
खोई रही
वक्त की दस्तक भी न सुन सकी।
अतीत की गुफाओ मे
रोशनी के
चिराग जलाती रही
जमाने की दस्तक भी न सुन सकी
दिन के उजाला मे भी,
सपनो मे
सितारो को सजाती रही कि
रात की दस्तक भी न सुन सकी।
जो भी
हालात बने
खुद उलझती रही, कि
अपने मन की दस्तक भी न सुन सकी।



उदास मन का सौन्दर्य

मन, तू मुस्कुराना सीख,
मन तू गुनगुनाना सीख।
व्यर्थ ही किया,
उदासियो का वरण।
खिल रहा प्रकृति का ओर-छार
समा ले मन मे,
यह सोन्दर्यबोध,
मन, तू मुस्कुराना सीख,
मन, तू गुनगुनाना सीख।
खोल द
यह आवरण,
उतर रही
बूँद-बूँद
फूलो पर शबनम,
नयना को पी लेने दे
यह रूप-अनूप
मन, तू मुस्कुराना सीख,
मन, तू गुनगुनाना सीख।
कैसा डर?
बाहर रख चरण
दूर कही
कोयल की कुहू-कुहू,
कानो मे रस घोल रही
सजा ले होठो पर,
यह सुन्दर साज,
मन तू मुसकराना सीख
मन तू गुनगुनाना सीख।



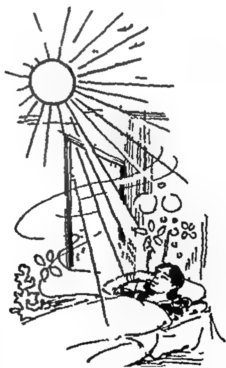
मन के कोने मे

एक खूबसूरत खयाल
जो बसा था,
मेरे मन मे
जाने कब से
खुशबू जेसा।
आज
जब, होश मे आया मन
तो पाया —
खुशबू ही नही थी,
वहाँ था
बस
एक रगीन फूल कागज, जैसा।
उसे ही
सँजो कर रख दिया है
मन के किसी कोने मे।
आ जाये
कभी फिर से
खुशबू से भीगा
कोई खयाल,
और, मन महक उठे
चमन जैसा।



चोरी हो गए सपने

रोज की तरह
आज भी,
खिडकी से झाँक कर
सुबह का सूरज,
मुझे जगाना चाहता है।
बन्द आँखो मे
रग-बिरगी झिलमिलाहट,
जबरन
घुसती चली आ रही है,
पर
उदास आँखे,
चुपचाप ढूँढना चाहती है।
आज
फिर,
उन सपना का,
जिन्हे चुराया हे
दुनियावालो ने।



फूलो की नियति

मेने कब कहा
फूलो से —
कि उपवन मे ना खिलो।

मेने कब कहा
फूलो से —
कि, हवाओ को ना महकाओ।

मैने कब कहा
फूलो से —
कि, रगो के सपने ना गूँथो।

मैंने कब कहा
फूलो से,
कि खिल कर फिर मुरझा जाओ।

फूलो ने कहा मुझसे
कि, खिलना
और महक लुटाना
रगो के सपने बुनना फिर
महाप्रयाण की ओर चल देना
यही तो नियति है हमारी।



खामोशी

चुप क्यो है, आसमान,
चुप क्यो है
आज हवा?
ऐसी उदास साँझ
रग नही,
कही रगा का जादू नही,
उजडी-उजडी लगती
नभ की बस्ती,
सूरज भी चुपके स सा गया।
दूर खडे वो
दरख्त,
किसी कलाकार के चित्र-से
मौन हे।
जाने किस दिशा मे मुडी हवाये
कि, पत्ते भी चुप है,
पक्षी भी चुप है,
चहकते नही,
कही मीठे सुरो का जादू नही
नि स्तब्ध वातावरण है
कही कोई हलचल नही,
शायद
सबको खबर हुई है
मरे मन म छाई है
जो खामोशी।



अच्छा है

लगता हे
परेशानियाँ
जीते-जी मेरा,
पीछा नही छोडेगी।
अच्छा हे
हमी
मेहमानबाजी छोड दे।



जिन्दगी के कितने रग?

जिन्दगी, तुम।
कितने रग बदलती हो?
गुलाबो-सी महकती हो,
काटो के दश छुपाये,
घुट-घुट कर रोती हो, कभी।
सपनो मे
सितारो-सी चमकती हो,
सपनो को चूर-चूर कर,
जीना मुश्किल कर देती हो कभी।
चञ्चल हिरणी-सी
चपल चाल से,
कभी, कुलाचे भरती हो,
और, सहम कर
डरी हुई हिरणी की
आँखो मे ठहर जाती हो कभी
बिजली-सी कौध
किसी भोले-से मन को
गुमराह करती हा,
हाथ पकड कर
धीरे से
सब कुछ समझा देती हो, कभी
कितने रग बदलती हो
जिन्दगी, तुम।



बिखरी किरचे सपनो की

टूटे हुए सपनो की
छोटी-सी किरच भी
जब, दिल मे चुभती है, किसी
सुनहरी साँझ मे
ज्यो बिजली कडकी हो,
बादल रोने-रोने को हा,
साँझ सिमट कर बैठी हो
मटमैली धोती मे, मै
सिहर उठती हूँ।
मन ही मन,
ठहर गया हो
कतरा-कतरा लहू, ज्यो
एक पल को।
वो सपने
सपने कहाँ थे? जिया था,
किन्ही आँखो ने मुद्दत से उन्हे,
और, टूट कर
जब बिखरी किरचे,
किरचे।
जब दिल मे चुभती है,
वो मटमैली साँझ
मेरे आस-पास घिर आती है, ओर
मेरी आँखे
नम हो जाती है।



बन्दिनी

मै बाहर आना चाहती हूँ
पर क्या?
इस अँधेरे कारागृह म
मेरी उजडी हुई जिन्दगी,
न जाने कब स सोग मना रही है
उन गुनाहा का,
जो मैन शायद किए ही नही।
अन्दर-बाहर
सब ओर घनघोर अँधरा,
भयानक ख्यालो के साये,
रात के सन्नाटो मे
जब मुझे बुरी तरह घेर लेते है,
मै चीख पडती हूँ, कि
मै बाहर आना चाहती हूँ।
एक बार
अपने उस नन्हे बच्चे को
सीने से लगाना चाहती हूँ
जो अब तक बडा हो गया होगा,
पर क्यो?
एक अपराध बोध से भयभीत माँ,
उसकी माँ कैसे हो सकती है?
और ममता का उफनता सैलाब
आँसुओ मे बह जाता है,
सिसकियाँ गूँज उठती है
ठण्डी ओर सीलन भरी कोठरी मे
पर
बहरी है दुनिया
गूँगे हैं लोग
खुदगर्ज या फिर लाचार हे अपने -
मै कण्ठ फाड कर चिल्लाना चाहती हूँ
मै बाहर आना चाहती हूँ।



मौत! तुम कहकर आना

मौत!
तुम कह कर आना
दबे पाँव चली आती हो,
देख अचानक तुम्हे
प्राण उड जाते है
खिडकी मे रखे कागज के टुकडे की तरह।

मौत!
तुम कह कर आना
कितने काम अधूर है,
कैसे होगे पूरे?
कुछ देर ठहर जाना,
मै आऊँगी तेरे घर,
सज-धज कर मेहमानो की तरह।

मौत!
तुम कह कर आना
बहुत दूर है आसमान,
छूना है मुझे सितारो को,
अँधेरो-उजालो की इस मायानगरी मे
मुझे जीना है
चिरागो की तरह,
मौत!
तुम कह कर आना।



एक नई किरण आस की

किस मुकाम पर
आ पहुँच हम —
कोई डगर पहचानी नहीं,
आगे बढे, कि
मुड जाये
कोई राह नजर आती नहीं।
यह कैसे अँधेरे,
सब चिराग
बुझे-बुझे से —
ऐसे मे
किसे आवाज दे?
हवाओ का रुख पता नही।
कोई —
कह दे जाकर,
आकाश के तारो से
इन बुझे-बुझे चिरागो को, थोडा-सा
रोशन कर दे।
मन मे उतरे, जो
ज्योतिकिरण
हम राहो मे उजाला कर लेगे,
अपने अन्दर ही ढूँढेगे
एक नये सफर की तैयारी।
बाहर फैले अँधेरा म,
कोई ठौर
नजर आती नहीं।



मंजिल कहाँ है?

ऊँचे पहाडो की वादिया मे,
फैला हुआ सूनापन।
नाते-रिश्तो से दूर
निरभ्र अकेलापन।
उभर आई है
मन की पीडा,
कभी हँसाती
कभी रुलाती
फुर्सत के इन क्षणो मे।
किसी
पहाडी नदी का शोर,
तोड रहा है
वादियो की चुप्पी,
और, मुखर हो उठी है
मन की चुप्पी भी।
मै कौन हूँ?
कहाँ हूँ?
क्यो हूँ?
सारे प्रश्न
एक साथ बह आये हैं,
फुरसत के इन क्षणो मे।
बर्फ से ढके कगूरो पर
उतर आई है,
सुनहरी भोर।
गूँजने लगा है
पक्षियो का शोर,
और
ढूँढता है मन
मेरी मंजिल कहाँ है,
फुरसत के इन क्षणो मे
ऊँचे पहाडो की वादियो मे।



स्वप्न में बचपन

कल रात,
देखा मैने एक सपना,
शोख गुलाब नहा रहे थे
बूँद-बूँद बरसात मे।
झूम रही थी
कलियाँ,
अभी भी, अभिमान मे।
कल रात,
देखा एक सपना, मैने
गुपचुप बाते करते थे,
एक दूजे से तारे,
आसमान मे
देख रहा था,
हँस कर चन्दा,
तारा को अनजान-से,
कल रात
देखा मैने एक सपना।
जानी-पहचानी-सी,
एक बच्ची,
निकली मेरे पास से —
जो भीग रही थी,
बूँद-बूँद बरसात मे,
टुकर-टुकर देख रही थी,
तारो को आसमान मे,
कल रात
देखा मैने एक सपना।



मे क्या लिखूँ ? क्या गाऊँ ?

मै क्या लिखूँ, क्या गाऊँ?
मन आगर मे —
नदियाँ, सागर
झर-झर झरते झरनो का
पाखी, और
फूलो के मौन निमत्रण का
आकुल शोर मचा है,
मै क्या लिखूँ, क्या गाऊँ?
मन आकाश मे,
सूरज, तारे
नूर लुटाता चदा —
साँझ और
कोमल-मना सुबह,
साथ-साथ उगती छिपती है,
मै क्या लिखूँ, क्या गाऊँ?
मनभुवन मे,
शब्द, अक्षर,
भाव और कल्पनाएँ,
सुरो की मधुर रागिनी,
सब रेशम से उलझे हैं,
मै क्या लिखूँ, क्या गाऊँ?



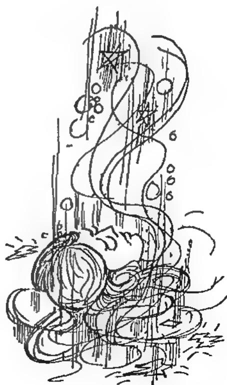
उन्मुक्त गगन मे

उन्मुक्त गगन मे उड चले,
दो पछी प्यारे-प्यारे।
कल तक थे
पिजरे के बदी।
साँस-साँस पर थे पहरे,
आज
करते हवाओ से वारे-न्यारे,
दो पछी प्यार-प्यारे।
सोने का घर,
चाँदी की दीवारें, और
चुगने को
चुग्गा था मोतियो का, फिर भी
मायूसी मे बैठे रहते,
दिन औ' रात मन मारे,
दो पछी प्यारे-प्यारे।
चाह जिन्हे हो
उडने की,
मस्त पवन की लहरो पर,
कब तक रहते,
सजे हुए यूँ,
पिजरा के आरे-बारे,
दो पछी प्यारे-प्यारे।
जिस पल
टूटे बन्धन,
पखो ने आलस छोड दिया,
हर्षित आँखो से,
बह चले
सजल सरगम के धारे,
दो पछी प्यारे-प्यारे।



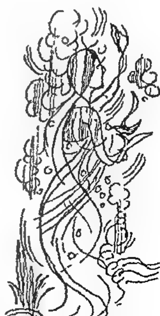
धागे-धागे सपने

अरसा हुआ
बुनती रहती थी,
मैं
धागे-धागे सपने,
आज, काँच के टुकडो जैसे
टूट कर,
बिखर गये सब सपने।
जब
बिखर गये हो सपने,
नीद कहाँ आती है?
रातो को बैठे-बैठे
गिनती रहती,
टूटे हुए सितारे।
काश!
थक कर सो जाती, मै
एक नींद गहरी-सी।
बचे सितारे
जोड-जोड कर
फिर से
बुनती,
धागे-धागे सपने।



अपने आप को खोजती, मैं।

मेरा खो जाना,
खुद अपने आप में,
मेरे जीवन की एक घटना थी।
मैं ढूँढ रही हूँ
आज,
खुद अपने आप को, अपने में ही।
ये चाँद लग रहा —
मन्दिर के अँधेरे गर्भगृह में,
कोई जला गया हो
ज्यो, दिया, और
झिलमिला उठी हो,
मूरत
सोने-सी,
मद्धम-मद्धम रोशनी मे।
आज, ये चाँद
चला आ रहा है,
अपनी स्निग्ध चाँदनी लिये
मेरे मन के अँधेरे मे —
झिलमिला उठे
छुपी हुई कोई मूरत,
और मै पा लूँ मुझे।
मेरा मिल जाना,
मेरे जीवन की अहम घटना होगी।
मेरा खो जाना,
मेरे जीवन की एक घटना थी।



चोट पर चोट

क्या करूँ?
इस नाजुक मन का।
जरा-सी
चोट खा कर,
बेघरबार हुआ जाता है।
जमाना —
क्या जाने?
हाल मेरे मन का,
नगाडा समझ कर
चोट पर,
चोट दिये जाता है।

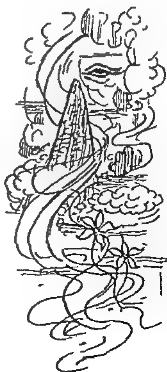


भीतर कही

मन मे
उग आया है
एक पहाड, पथरीला।
फोहे-फोहे गिरती बर्फ का बोझ
झेलता हे, जो
भीतर, कही —
दिन-रात।

सुनती हूँ
नदी की कल-कल,
कही, गहराइयो से आती हुई
दरकते पहाडो को
साथ ले कर
सुनती रहेगी — उन्ही मे घुल कर,
उनक दु ख-दर्द।

निस्पन्द मौज से झरती हुई-सी
है एक हँसी भी, वही कही,
घाटियो मे बिखरे फूलो की,
मेरा श्रम, मरी थकान
मेरा टूटना-जुडना, डूबना-उतरना,
सब कुछ हर लेती है,
पल मे।



दो डग

थोडा-सा आसमान
चाहा था,
जहाँ उड सके
पाँखो पर चढ कर,
मेरे मन का
पागल पछी।

थोडा-सा आसमान
चाहा था,
कि, देखूँ सुन्दर सपने।
कैसे कैसे होते हे,
नभ को छूने के सपने?
आर
जमी पर पडे
निशा अपने?

थोडा-सा आसमान
चाहा था
ओर
दो डग भरूँ,
इतनी-सी जमीन।

पर आसमान
तो आसमान हं,
इतना बडा, इतना बडा
इतना बडा ।



एकाकी मै !

एक बूँद का दु ख
कौन सुनेगा ?
इस
गहराते सागर मे।
फूल! तुम्हारे मुरझाने की
किसे फिक्र है ?
फूलो से
महकते चमन मे।
कम न होती
तारो की गिनती,
टूट जाये, अगर
एक तारा, आसमान मे।
मै जीऊँ,
या मर जाऊँ
क्या फर्क पडता है ?
इस नश्वर जग मे —
बूँद फूल,
तारे और मैं
क्या इतने एकाकी है?



भय की अनुभूति

रातो के घने अँधेरे,
और
छोटा-सा
जलता दिया।
आने वाला कोई तूफान
बुझा न दे,
उसे भी।
बन्द कर देती हूँ
सारी खिडकियाँ।
सारे दरवाजे
पर मन
उसका क्या करूँ?



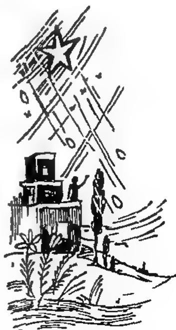
आँखो मे अटका सच

दुनिया का सच!
आँखा मे
अटका,
आँसू लगता है
न पीते बनता है
न बहाते बनता है।



एक अकेला तारा

ओ साँझ के नीरव तारे
चकित नयन से
देख रहा तू,
सूने अम्बर के आर-पार क्या?
तू ज्यो जलता
मेरा ह्रदय जलता, सुन
और भी हे सूने चौबारे,
ओ साँझ के नीरव तारे।
तनहाइयो के घेरे मे
यूँ न समझ —
तू है एक अकेला,
हम भी बैठे मन को मार,
जब गहरायेगा
कल्मष नभ मे, मैं देखूँ
निकल पडेगे
तेरे साथी सारे,
ओ, साँझ के नीरव तारे।
मेरे तनहा घर मे
खिलेगी —
कब कलियाँ ?
कब होगी तारा से बाते ?
टूटेगी —
कब, बूँदो की लडियाँ, ओर
कब होंगी बरसाते —
हम सोच-सोच कर हारे,
ओ साँझ के नीरव तारे।



धूप तलाशती, मै

नभ के उच्चछोर से
सतरगी किरणो के रथ पर,
निकला ही था, सूरज
फैली ही थी ललाई,
घिर-घिर आये काले बादल।

कैसे करूँ?
किरणो का स्वागत,
दृग मे घुस कर बरस पडे है,
ये नीर भरे कजरारे बादल।

शून्य गगन मे
भटक-भटक कर, ले
बिजलियो की चटक-मटक,
आँख मिचौनी खेल रहे है,
देखो, ये मतवारे बादल।

मुझे कहाँ विश्राम, सखी
मेरे घर आँगन मे,
बरसात भरी है।
जाने कहाँ से उड कर आये,
बिन मौसम
हरकारे बादल।

चातक-सा मन खोज रहा है,
एक धूप का शतदल —
बीच गगन मे
निकला ही था
फिर
ज्योतिपुज सुनहरा, कि
घिर घिर आये गहराये बादल,

देख सखी
ये नीर भरे कजरारे बादल।



मन! तू धीर धर

कई बार समझाया
मन को
मन! तू धीर धर।

ये, जो
पथ चुना है, चलने के लिये
फूलो का आरामगाह नही,
काँटो के शूल
उगते है यहाँ, उन्हे भी प्यार कर
मन! तू धीर धर।

माना कि,
बहुत अँधेरा है
दीवारो के इस पार
पख लगा कर मत उड,
आकाश मे अँधेरा है
निकलेगा, चाँद इक दिन
मन! तू धीर धर।

ये धूप-छाँव की परछाइयाँ,
सुख-दु ख के मेले है,
आज भले वीराने हो, कल
मौसम सुहाना होगा
देख, क्षितिज की ओर
मन! तू धीर धर।



चाँद का हर रूप मेरा अपना होता है

कभी-कभी
जब
अधूरा-अधूरा,
पीला-पीला-सा चाँद निकलता है,
असीम
अँधेरे नभ मे,
उस रात
चाँद
मेरा अपना होता है।
स्निग्ध चाँदनी मे डूबा,
सुनहरे
थाल-सा चाँद
जब निकलता है,
असीम
अँधेरे नभ मे
तारो को लेकर साथ
उस रात भी, चाँद
मेरा अपना होता है।



मन! तू धीर धर

कई बार समझाया
मन को,
मन! तू धीर धर।

ये जो
पथ चुना ह, चलने के लिये
फूलो का आरामगाह नहीं,
काँटो के शूल
उगते है यहाँ उन्हे भी प्यार कर,
मन! तू धीर धर।

माना कि
बहुत अँधेरा है
दीवारो के इस पार
पख लगा कर मत उड
आकाश मे अँधेरा है
निकलेगा, चाँद इक दिन
मन! तू धीर धर।

ये धूप-छाँव की परछाइयाँ
सुख-दु ख के मेले हे,
आज भले वीराने हो कल
मोसम सुहाना होगा
देख क्षितिज की ओर
मन! तू धीर धर।



चाँद का हर रूप मेरा अपना होता है

कभी-कभी
जब
अधूरा-अधूरा,
पीला-पीला-सा चाँद निकलता है,
असीम
अँधेरे नभ मे,
उस रात
चाँद
मेरा अपना होता है।
स्निग्ध चाँदनी मे डूबा,
सुनहरे
थाल-सा चाँद
जब निकलता ह,
असीम
अँधेरे नभ मे
तारो को लेकर साथ
उस रात भी, चाँद
मरा अपना होता है।



मेहा दे मेघा

ओ। ऊपर वाले
इस बरस
यह कैसी रुत आई?
फागुन बीता
बादल ना उमडे
घर आँगन सूखे-सूखे,
पनघट भी सूने-सूने
कगन खनके नहीं
पानी बरसा नहीं।
उड रही है धूल
तप रही है धूप
नटखट बालगोपाल
कागज की नावे लेकर
गलियो मे
धूम मचाते नही
पानी बरसा नहीं।
बच्चे भी
अपने बच्चो को लेकर
परदेश गये,
ये लम्बी दुपहरियो वाले दिन,
काटे कटते नही
और मन लगता नही।
पानी बरसा नही
ओ। ऊपर वाले
अब तो मेहा मेघा दे।



हवा भी बेरहम हुई

बालू क विस्तार पर
मुश्किल से,
कदमा के चिन्ह उकेर थे।
बरहम
हवा क झाका न,
क्षण भर म
सार चिन्ह,
मिटा डाले।



दर्द अकेलेपन का

आज
हम कितने अकेले
सूना सूना हे आँगन,
सूने से दरवाजे।
लगता ह
रूठ कर कही
चली गई ह बहारें।
याद आते ह
हँसी के खिलखिलाते बहते झरने।
याद आते ह
बातो के अकूत खजाने
गुमसुम है
आकाश भी,
अँधेरे मे डूबी है छत,
किसी ओर ठौर पर
निकलेगे चाँद सितारे।
आज
फूलो से मन भरता नही
कोई गीत हमे बहलाता नही,
यादो के सागर मे डूबे,
आज हम
कितने अकेले।



वहारें आने वाली ह

फूल खिला
मन म
गन्ध उडी हवा म।
खुशबू का काई झोंका,
पास स गुजरत
कह गया कि
वहारें आने वाली हैं।
बैठा कोई पछी
डाल पर
गाने लगा मीठे सुरा म
गूँज उठी अनुगूँज
चमन-चमन म कि
बहारें आने वाली हैं।
उडी तितलियाँ
इधर-उधर
बाते की
फूल-फूल से
खुल गई
रगा की दहलीजे।
मन ने कहा —
कि
बहारें आने वाली हैं।



तुम मुसकरा दो

चेहरे से
उदासी के बादल
छँट जाने दो,
आकाश मे बदरी छाने लगी है।
सूखी डालो पर
हरियाली
दिखने लगी है।
बीत रही यामिनी
भोर होने को है,
एक नन्हीं-सी चिडिया
फिर
घर के आँगन मे चहकने लगी है।
उदासी
धीरे-धीरे जान, कहाँ
जाने लगी है,
मुसकरादो —
आकाश से बूँद झरने लगी है।
चहुँ-दिशी
हवाये
महकाने लगी है।



मन तनहाई ढूँढता है

भूलभूलैया म
खो गया —
अब राह ढूँढता है,
मन तनहाई ढूँढता है।

नफरत के धुएँ म
घुँट रहा —
चाहत ढूँढता है,
मन तनहाई ढूँढता है।

नाते-रिश्ते
प्रश्नचिन्ह बने,
जवाब ढूँढता है,
मन तनहाई ढूँढता है।

बेकार की बातो मे
बेबस हो रहा
विश्राम ढूँढता है,
मन तनहाई ढूँढता है।

उडने को आकुल
पख पसारे
आकाश ढूँढता है,
मन तनहाई ढूँढता है।



भीगा-भीगा मन

आज
अम्बर से रस बरसा है।
बूँदो ने
पायल पहनी है,
निर्झर का जल बहका है।
शिखरो पर
बर्फ बरसी हे और
मन हुलसाया-सा लगता है।
चॉद के चेहरे पर
नूर उतरा है
तारो की हँसी शरमाई है,
फूलो का रग
निखरा-निखरा है।
पत्तो पर रोनक छाई है, और
मन हुलसाया-सा लगता है।
आज
मन मे
कोई गीत जागा है,
कही कोयल गुनगुनाई है,
यूँ तो
मासम सूखा-सूखा हे,
बिन बारिश के भीग रहा मन
तेरे आने की खबर जो आई है,
और
मन हुलसाया-सा लगता है।



जीवन निर्झर

झरना
झरता झर-झर,
पथरीले रास्ता मे
गिरता
उछलता हर-हरा कर।
सौन्दर्य बिखर जाता
सुनसान वादियो मे
मधुर स्वर लहरियाँ लुटाता,
हर डगर पर।
तू भी बहता चल
ओ, मेरे मन के निर्झर, कि
जीवन के
उबड-खाबड रास्तो पर।
खिल उठे
जीवन का राग -
उठता, गिरता, लहराता चल कि,
बिखर जाये
किरणो के रग
हर डगर पर।



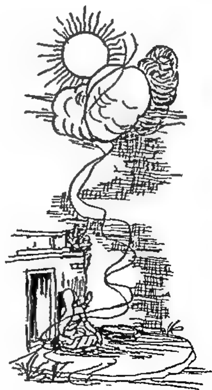
पर्व

एक दिन।
जीवन का पर्व बना
जब, हम
महलो से बाहर आये।
ओर, साँसे लीं खुली हवा मे,
धीरे-से छुआ
माटी को
फूलो से भर उठी धरती,
अँजुरी भर
पानी के बहाने
लहरो ने आकर
तन-मन भिगो दिया सारा।
स्नेह से
नजर उठाई, उन
आँखा मे
प्यार का सागर उमड आया।
क्यूँ मायूस रहे, तुम
अब तक, इस प्यार से
क्यूँ रुके हुए थे, अब तक
महलो मे
लाचार से
घुटती हुई साँसो ने
बार-बार पूछा हे हमे।
वे क्या जानें,
कभी कभी आते है,
जीवन मे ऐसे पर्व।



समय की परतो मे

हे! मेरे बीते हुये कल!
मेरे अतीत
सो गये हो
गहरी नींद म।
पर
समय की परता को तोड कर,
मैं जाग रही हूँ।
याद है मुझे
जूही, बेला के फूलो-से
वो
छोटे-छोटे सुख,
आज भी बसे हैं
मन की गहराइयो मे।
भूल कहाँ पाई मे
उन दर्द भरे उपहारो को भी
सहजते, सम्भालते
करता था, मन,
कही और चल
छूट-छूट जाती थी,
मन की डार।
आज भी
तुम
समय की परता मे,
सोते जा रहे थे, पर
मे
जाग रही हूँ।



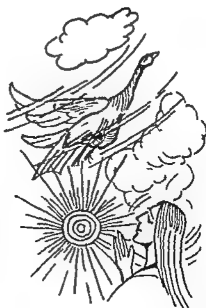
कच्ची धूप से रिश्ते

कुछ रिश्ता की धूप
इतनी कच्ची
क्यो
होती है?
एक टुकडा बादल
आते ही
आँगन से
खिसक जाती है।
कच्ची धूप के रिश्ते
शायद ऐसे ही होते है।



मन का पछी

नील गगन मे उडता फिरता
मन का पछी अकेला।
आज यहाँ, और
कल
सात समन्दर पार
कहाँ-कहाँ की
धूल छानता
मन का पछी अकला।
ना कोई डेरा
ना वसेरा
पल भर का विश्राम नहीं,
रातो को भी
चैन नहीं
सपना मे चञ्चल विचरता रहता
मन का पछी अकेला।
सुबह हुई, या
साँझ ढली,
बादल गरजे, बरसे, चाहे
आने वाला
कोई तूफान हो।
हर मौसम मे
सुख मे
दु ख मे
यूँ ही भटकता रहता
मन का पछी अकला।



जिन्दगी

तुम
इस गलतफहमी मे मत रहना
कि जिन्दगी
तुम्हारे घर के आगे से
निकलती हुई
छोटी-सी गली है।

जिन्दगी तो
मीला लम्बी एक सडक है,
जिस पर
सरपट दौडते वाहन,
किसी
दहशत की तरह
पास से गुजर जाते है।

और, हम
बर्फ के बुत बने,
देखते रह जाते है।
हाँ
जिन्दगी
काँटो से चुभता दर्द भी है,
केवल
लाल गुलाबो का
गुलदस्ता नही है।



अनुरागी-बैरागी

सुख-दु ख की
मन्दाकिनी।
किनार बैठे,
मन
बैरागी हुआ जाता है।
घर की
चौखट तक आते-आते,
मन
अनुरागी हुआ जाता है।



झील का किनारा

झुकता हुआ
आसमान
एक अकेला सितारा
पेडो के पीछे छुप कर
सूरज ने किया
साँझ का इशारा
झील का किनारा।

चाँद
अम्बर से उतरा
करने, पानी मे अठखेलियाँ,
ये चाँद, कि
वा चाँद है
भरमा गया मन बेचारा
झील का किनारा।

ठण्डी हवा
छू कर तन-मन
कहने चली
उडते हुए श्वेत-श्याम मेघो से
ठहरा-ठहरा मन यहाँ,
लो उग आया कही
एक और तारा,
झील का किनारा।



हम घबराये नहीं हैं

लहराते हुए
महासिन्धु की गहराइयों से
आती हुई लहरों को
देख रही मैं
रेत में बिखरते हुए।
अनन्त आकाश की
ऊँचाइयों पर,
चमकते हुए सूरज को,
अपने ही
ताप से जलते हुए।
फिर क्या?
उदास हो बैठी हूँ, मैं
लहरों से झंकृत इस तट पर,
अकेली अनमनी-सी
सोच रही कि मैं छली गई,
अपने ही विश्वासों से।
हर लहर
पल दो पल का जीवन
जी रही,
किस उछाह से, उमंग से,
न थकना, न रुकना
निरन्तर बहते रहना,
उठो! मेरे मन।
तुम भी लिखो एक कहानी
वक्त की किताब के
कुछ पन्ने कोरे हैं, अभी
कि, हम
घबराये नहीं हैं,
जिन्दगी के विश्वासघातों से।



अचरज

जो हमे
जानते नहीं थे
सच है कि
वो हमे पहचानते नही।
जो हमे
पहचानते थे,
अचरज है, कि
आजकल
वो हमे जानते नही।



उड़ न जाएँ वे क्षण

एक अन्तराल से
इन्तजार था
जिस वक्त का, वो
आकर चला गया।
ये लम्बी बाँहें
लगी बहुत छोटी, जब
फड़फड़ाते पंख-सा, वो वक्त
देखते ही देखते
उड़ गया हाथों से।
वे, थोड़े से क्षण
दे गये इतना सुख, कि
एक और अन्तराल जी लूँगी, मैं,
इन्तजार में।
कोई ऐसी सुबह
जब, उजाले फैले होंगे,
पाखी चहकेंगे
नहा उठेगा मन
किरणों की बरसात से,
मैं थाम लूँगी, तब
उस वक्त को
इस तरह, कि
फिसल न जाये फिर हाथों से।



पीडाओ का अपनत्व

पीडाएँ
मन्दाकिनी-सी बहती हैं
लहर-लहर
बलखाती-सी
मर मन मे।

बारिश की बूँदा-सी
बरस-बरस जाती हैं।
झूम-झूम कर,
मरे मन म!

दरख्ता की
दूर-दूर तक फैली जडा-सी
घर कर जाती हैं,
अन्दर ही अन्दर,
मेरे मन म।

क्या मुझे धरती समझ लिया?
पीडाआ ने।
घर बमाना चाहती है,
मेरे मन मे।



थकान में मुसकान



चुपके से चली आती है

हजारो रग
हजारा रूप
अनुपम छटाये लेकर
उभर आते हैं
कामल पत्ता पर, कैसे
मुझ पता नहीं।

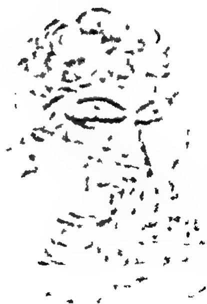
रग-बिरगे फूल
खूशबू से महकते फूल,
खिल जाते हैं
डाल-डाल पर, कैसे
मुझे पता नहीं।

अनगिनत तारे
ये चमकते सितार,
बिखर जात हैं,
सुरमई अँधेरा मे, कैसे
मुझे पता नहीं।

ये छटाये
ये खुशबू
ये चमक
चुपके से चली आती है
मेरे मन के
अँधेरो मे कैसे?
मुझे पता नही।



आँसू



कितना सुन्दर है आकाश?

लहरों के मचलते शोर ने
दस्तक दी है
जब से
मन के दरवाज़े पर
बादल बन
मन उड़ने चला है
सागर से उठती धुंध-सा
सपनों ने भी करवट ली है, तो
मन की पीड़ा कम हुई है?
चली आती है,
सतरंगी साँझ
नये-नये धर रूप सुनहरे, हमें
देख अकेले बतियाने को
कितना सुन्दर है आकाश।
क्यूँ कभी देखा नहीं?
ये तन्हाई जो मिली, तो
मन से मन की बात हुई है।
भीगे-भीगे आसमान में
इस छोर से
उस छोर तक खिला, जो
कोमल रंगों का इन्द्रधनुष
जाना हमने, कि
एक फूल का खिलना
क्यूँ भर देता है मन में
इतने सारे रंग?
नयनों की अंजुरिया में
बन्द हुए यूँ रंग
घनी उदासी कम हुई है।
अपनी पीड़ा
अपनी तन्हाई
अपने सपनों से चाहत हुई है।



कितने बह गये आँसू

थक चलीं ये अँखियाँ
बरस-बरस
सावन।
अब तुम बरसो।
बहारो के नगमे
किसने छीने
धरती के होठो से?
दर-दर भटकते पीले पात
कुछ कहते, सुनो
सावन, हे सावन। सावन हे, सावन
अब तुम बरसो।
आँधियो का मासम गुजर गया,
थक कर सो रही है
पेडो की परछाइयाँ।
कितने
बह गये आँसू कि
प्यासी हो चलीं ये अँखियाँ
सावन
अब तुम बरसो।
घिरती घटाये
बार-बार
तपते हुए सूरज को
बादलो की टोह मे
प्यासे-प्यासे
मोर पपीहे
प्यासी हो चली अखियाँ
बरस-बरस
सावन
अब तुम बरसो।

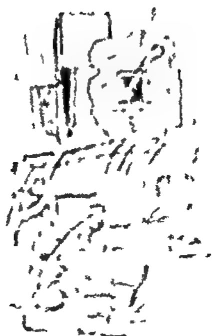


उजाले

कहाँ गये
मेरे घर के सारे उजाले?
अँधेरे साया में
आज
सहमा-सहमा-सा घर मेरा।
मौन है
आवाज़ भय से
चेहरा से हँसी गायब है।
ऐसे में
कौन है, जो
उठकर
दीया-बाती कर दे।
सहमे हुए दिलों में,
नन्हीं-सी
जोत जला दे,
जोत से जोत जले
और, हो जाये
घर में उजाले।



निर्माण के लिए उठे हाथ



हार क्या, जीत क्या

चलो
चलते रह हम
कर्म-पथ पर
हार क्या
और जीत क्या?
क्या उलझे
मन।
फैसला
ईश्वर को करने द।
कुछ
खो कर ही
कुछ पाना है,
फिर क्यो
इसकी फिक्र करें?
छोडे मायूसी,
होठो पर हँसी रहने दे।
दु ख भी
और सुख भी
क्यूँ, ना
आपस मे बाँट ल ?
चलो
चलते रहे
कर्म-पथ पर।
हार क्या
और, जीत क्या?



कैसे गुजरी ?

मत पूछो,
कैसे गुजरी रात
चाँद निकला नहीं
और ना ही
तारा की रल-पेल मची।
घटाटोप अँधेरे म
सहमे-स,
सारी रात बैठ रहे।
मत पूछो,
कैसे गुजरी रात।
आसमाँ रोता रहा,
आस गिरती रही,
आँसू
पलका पर सजते रहे।
कब पौ फटे
यही इन्तजार करते रहे,
मत पूछो,
कैसे गुजरी रात।
हवा थी खामोश
दरख्ता के साये
मन मे
दहशत जगाते रहे।
मन का उजाला ले कर
सारी रात
अँधेरा से लडते रहे,
मत पूछो,
कैसे गुजरी रात।



जाता।



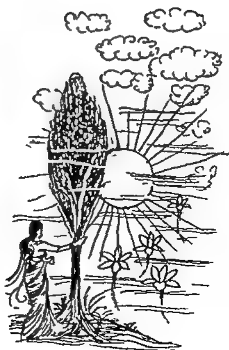
ममता भरी एक थपकी

निपट अकेला उडता
तू आसमान मे पछी
ऊँची उडाने
मुश्किल राहे
थकान भरी है
पखो मे।
सुस्ता ले थोडी देर
ओ, मेरे भोले पछी।
सूरज के उस
देश मे
तू ढूँढ रहा मजिल कहाँ?
सूखे कठ
व्याकुल मन
कोई तो तेरा साथी होगा
कह दे उसे
तू
दु ख सुख अपने मन का
ओ मेरे भोले पछी।
आ बैठ
तनिक —
मेरी मुँडेर पर
मै पखो को सहला दूँगी,
दो बाते कर लूँगी
तुझे
मजिल का पता दूँगी
ओ मेरे भोले पछी।



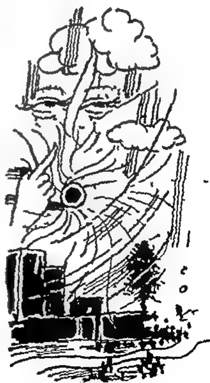
तब तक

उजली सुवह
सोने-सा सूरज
रूई से चिखर बादल
मदमस्त रजत लहरा पर
तैर रह
सोने के शतदल
इन खूबसूरत पलो म
हँस पडी है
प्रकृति बाला
कब
चिलचिलाती धूप
बरसा देगी
लाल-लाल अगारे।
तब तक
कुछ पल
मन
तू भी मुसकराले
मन
तू भी मुसकराले।



वक्त है अभी

थम गया है
तूफान,
कहर बरपा कर,
थक कर
सो गया होगा कहीं।
रुक गई है
बरसात भी
घरों, झोपडियों-गाँवों, शहरों को
अपने
सैलाब में बहाकर,
शर्म से
चेहरा छुपा लिया होगा कहीं।
पर तुम
अभी थके नहीं हो,
दिन-रात
बुना करते हो
मकडी जैसे नये जाल कहीं।
वक्त है, अभी,
थम जाओ
वरना,
समय थक कर सो जायेगा कहीं।



तट पर बैठी माँ

मै
अक्सर सोचती हूँ,
पत्थर का बुत बन जाऊँ।
पर,
कामयाब कहॉ होती हूँ?
मन के अन्दर
पिघलता है, कुछ
बर्फ-सा, निरन्तर।
एक झील है
जो लहराती है, निरन्तर।
तट पर बैठी
एक माँ
यादो मे डूब कर,
आँसू बहाती है।
बूँद-बूँद बहता
खारा पानी,
चट्टाना को तोड कर,
जब रिसता है, दरारो से
तब —
टूट कर बिखर जाता है
बुत बनने का इरादा।
फिर एक कोशिश करूँ?
मैं
अक्सर सोचती हूँ,
पत्थर का बुत बन जाऊँ।



वक्त है अभी

थम गया है
तूफान,
कहर बरपा कर,
थक कर
सो गया होगा कहीं।
रुक गई है
बरसात भी
घरों झोपड़ियों-गाँवों शहरों को
अपने
सैलाब में बहाकर,
शर्म से
चेहरा छुपा लिया होगा कहीं।
पर तुम
अभी थके नहीं हो,
दिन-रात
बुना करते हो
मकड़ी जैसे नये जाल कहीं।
वक्त है, अभी,
थम जाओ
वरना,
समय थक कर सो जायेगा कहीं।



मन मरुस्थल

जिस दिल मे लहराता नही
प्यार का सागर,
उग आता हे —
सूखी रेतो वाला
मरुस्थल।
जो सोख तो लेता है
पूरा का पूरा
सागर, पर
लौटाता नही
छोटी-सी
छलकती गागर।



नियति बनजारो की

मन तो था बनजारा
रहा भटकता और
गुनगुनाता, पर
कहाँ ठौर है,
कब उठा कबीला!
इस चिन्ता से दूर
उडता रहा पछी बन-बन।
अब तो
कहने लगे हैं
लोग हम भी कि
हम भी हुए बनजारे।
किस ने पूछा
हाल हमारा
जब छाड चले थे, हम
घर अपना
रीत न जानी इस जग की,
आर टूट गया
एक सुन्दर सपना।
अब तो
काफिला चल पडा
अनचीन्ही राहो पर,
कौन जाने
कहाँ बसेगी
हम बनजारो की बस्ती?



इन दिनो

सुनती रही हूँ
रात भर
दरख्तो की कानाफूसी,
बात कर रहे थे
किसी पतझड की।
इन दिनो
शहर मे आया है पतझड,
भर लूँ
कुछ पत्ते
आँचल मे, यह
कोशिश कई बार की,
पर
हर पत्ता
उडता चला गया
सूख कर
सनसनाती हवा के साथ।
थक कर
बैठ गई हूँ, सूखे
दरख्त के सहारे
इन्तजार है,
बहती हवा करेगी इशारे
शहर मे
वसन्त आने वाला है।



ख़ुदा जाने ?

देख
खुशी की लहर
तुम्हारे चेहरे पर
हजारों झरने बहने लगे,
मेरे मन में।
और, अगर
कहीं देख लिया
खुशियों का बहता झरना
तुम्हारे
चेहरे पर
तब
मेरे मन का क्या होगा?
ख़ुदा जाने।



यह कैसा बचपन ?

वो मासूम बच्चा,
झाड़ू लगा रहा था
रेल के डिब्बो मे।
फटे कपडे,
या कहूँ अधनगा,
काँपता जिस्म,
ओर, कूडा बुहारता।
सर्द रात मे,
धूल-धूसरित,
कचर का डिब्बा-सा,
बच्चा।
भूख से कुम्हलाई थीं,
कमल-सी आँखे,
जूठन के खातिर
प्लास्टिक का थैला लिये हाथ मे
मासूम बच्चा।
यह कैसा बचपन ?



बेखबर, उसकी गोद मे

एक चाँद का टुकडा
उसकी गोद म
रजत धवल चाँदनी मे नहाया,
गुलाब
उसकी गोद मे।

फिरे चहकती
मुसकान महकती
आँखो मे छलकता प्यार
जैसे
एक सुन्दर बालक
उसकी गोद मे।

गाती लोरियाँ
ज्यो मीठी रसभरियाँ
होकर सबसे बेखबर,
मानो
दुनिया की सारी दौलत,
उसकी गोद मे।

शिशु विहँसता, देख
विहँस उठती दो आँखे
हो गया
सपना कोई साकार-सा
दो कमल-नयन
उसकी गोद मे।



उसका दु ख

माई ऐ।
क्यूँ भेजा परदेश इतनी दूर
सलमा-सितारा वाली चूनर म,
समट लाई थी, जो सपने
किस्मत ने कर दिये चूर-चूर।
तर आँगन की थी कभी
मे सोनचिडी,
जो प्यार की प्यास मे
भटकती रही मरुधर म,
काँटे लदी खेजडियो मे
फट गई
चूनर मेरी,
टूट गये वो लडियाँ, झूमर
कगन, पायल बारी-बारी,
बहुत अकेली थी म
किसको कहती तन-मन की पीर,
इस काली अँधेरी कारा मे
ले आइ है तकदीर।
काला हुआ माँग का सिन्दूर
अँधेरी हो गई जिन्दगी,
आँसुओ मे बह गया
ममता का सेलाब मजबूर।
छूट गये
सब रिश्ते-नाते
भूल गये मेरे बाबुल मुझे
सखी, सहेलियाँ, बन्धु-बान्धव
कभी न होगी अब
सितारा स बाते।
माई ऐ।
तू तो याद करती होगी
सलमा सितारा वाली चूनर ओढ
जब कोई बेटी पराई होती होगी।



तुमने कभी देखा नही

फूलो की तरह मुसकराते हैं हम
शान्त बने रहते हैं
शायद
यही वजह है कि
काँटा के रिसते हुए घाव
तुमने कभी देखे नहीं।
हम धूप हैं -
सूरज ने चाहा तो
बिखर कर विहँस पड,
बादला की रुसवाई ने
आँखा म
आँसू भर दिये जा,
तुमने कभी देखे नहीं।
तूफाना ने
चिथड-चिथडे कर डाली
पोशाक
बिना हारे खडे हैं
वक्त की दहलीज पर
छुपा जाते हैं पैबन्द
जो, तुमने देखा नहीं कभी
बहते है
हवाओ की तरह, कि
मुश्किलो के
दुर्गम पर्वता पर
तुम साँस ले सको
अन्दर जो घुटन
पल-पल बढती जा रही है
तुमने कभी देखा नहीं।
हम चाँद थे
आकाश के कभी?
पानी म
परछाई मात्र रह गये है।
एक लहर आ कर
सारा वजूद हिला जाती है
तुमने कभी देखा नहीं।
हम
लहरें तो नहीं कि
बार-बार चट्टाना स टकरा सके,
चट्टान बनने की कोशिश मे
मन का टूट-टूट जाना,
तुमने कभी देखा नहीं।
तुम समझते हो कि हम
सिर्फ फूल हैं
हर पाँखुरी के टूटने पर
आत्मा ने
जा दश झेल हैं
तुमन कभी दखा नहीं।



बेचैन मन

घन उमड-घुमड कर
बरसा देते
अपने मन की बेचैनी।
सागर भर देता
उठती-मचलती लहरो मे,
मन का सारा बोझ।
फूलो पर
निखर आता है
कलियो के मन का राज।
आसमान भी,
इन्द्रधनुष के रगो मे
कह देता
अपने मन की बात।
मै।
घन नही हूँ,
सागर नही हूँ,
मुझमे कलियो जैसा हुनर नहीं,
और, आसमान-सा विस्तार नही,
मै।
शब्दो का भण्डार नहीं,
मुझे, छन्दो की सीमा ज्ञात नही
फिर, तुम्ही कहो
मै कैसे लिखूँ
अपने मन की
बेचैनी।



अपना दर्द, उनका दर्द

पहचान हुई
लहरा से जिस दिन
अपना दर्द ही
लहरा म खो गया।

आत-जाते
दे गईं
अपने मन की सीप सुन्दर,
ले गई, आँखो का आँसू
जो सागर मे घुल गया।

कुछ कह रहीं लहरें
न आकाश ने सुना
न धरती ने सुना,
अपना दर्द
अपने मे ही घुल गया।

प्यार भरी
ये दुनिया मेरी
फिर, क्यूँ औरो से त्रस्त हुआ मन?
कि, एक दर्द
मुझमे घुल गया।

पहचान हुई लहरो से जिस दिन,
ये दर्द लहरो मे घुल गया।



कल, फिर तू अकेला है

मौसम मेहरबान है
खुशियो का लगा अम्बार है
कहकहो की रुत है, और
उडते दिनो का त्यौहार है।
कह दो
जो कुछ कहना हे
कि ये दो दिन का,
बस मेला है।
आज मिल रहे —
बाहे फैलाये
कल फिर तू अकेला है।
वक्त का पछी
स्वच्छन्द विचरता
कब पिजरे मे टिकता है?
हर पुलकित पल के
आगे-पीछे
गुमसुम-सी उदासी है
गा दो
जीवन्त धुन कोई
कल किसने देखा है कि
जीने की तमन्ना हो, ना हो।
आज गा रहे गीत मिलन के
कल फिर तू अकेला है।



अँधेरे मे उजाले

तमस ढोती है,
जिन्दगी।
जीने की बेबसी म
और, लिखती है इतिहास अँधेरो का
सदी-सदी मे
चलो
वहाँ एक दीप जला दे।
पको रोटी की खुशबू का
तरसती है
जिन्दगी।
थक जाती ह हथेलियाँ,
भूख से बिलखते लाडलो को थपकाते
चलो
वहाँ, जीवन की सरगम सुना दे।
अनपढ, बेजुबान,
दलित रहते हैं
गदी बस्तियो मे।
नाचती ह गरीबी, नगा नाच जहाँ
चला
उन्हे भी गले से लगा ले।
दीया की लम्बी कतारें,
महलो के जगमगाते कगूरे
एक दीया
वहाँ से उठाकर उनके नाम लिख दे
जो जीते है
उम्र अभावो मे
जो मरते है गुमनाम अँधेरो मे
चलो
उन्हे अपना हक दिला दे।



मन कहाँ निराश।

मन क्यूँ रहता है इतना उदास,
कि, छिन गया मेरे अधरो का हास।

ऐसा भी नही कि बहार नही,
और, गाते मेघ मल्हार नही।

तालाबो मे धूप सेकती कमलिनी
चाँदनी रात मे खिली-खिली सी कुमुदिनी।

मन कहाँ निराश है?
प्राणो मे लगी फिर ये कैसी प्यास है?

सपनो मे जो खिले थे गुलाब
जागे तो, मुरझाने को थे बेताब।

फैला है अनचाहे लम्हो का ससार
सूने पडे है, आज, घर-बार।

मुसकरा कर बहारें, कर जाती है उदास,
कही खो गया है मेरे मन का उजास।

ढूँढती मै, नन्ही सी आस जो
लौटा दे मेरे अधरो का हास।

मन क्यो रहता है इतना निराश
मन क्यो रहता है इतना उदास।



एक पुलक मन मे

असफलताओ की चट्टान पर
आकर, जब भी मैं
उदास, गुमसुम-सी बैठ जाती हूँ
सागर की शीतल लहरें,
अनवरत
पॉवो को पखारती है,
एक पुलक, तब
तन-मन मे फैल जाती है।
उठ जाती हूँ मे
चट्टान से तुरन्त, और
चहलकदमी करती हूँ लहरो मे।
बहुधा ऐसा होता है, कि
एक नई उमग लेकर
हर रोज घर लौटती हूँ, मै
यह सोचते हुए, कि
वो दिन भी कभी आयेगा
जब उदास मन लेकर
चट्टान पर जाकर, ना बैठूँ,
लहरो के साथ दौड़ूँ
बस, दौड़ूँ।



प्यार ही प्रभु है

छुपा कर रखते हो,
क्यो
मन की घाटियो मे
प्यार को?
छलकने दो
शोर मचाती नदियो-सा
प्यार को।
ओढ रखा है
क्यो
ये रुखापन
प्यार मे ही प्रभु है
मन्दिर की घण्टियो-सा
बजने दो
प्यार को।



मै और मेरी जिन्दगी

जिन्दगी से मिले
तो, जाना
कि, क्या है जिन्दगी?
कैसी है जिन्दगी?
जीते जा रहे थे, दिन औ' रात
ढोते जा रहे थे
दु ख औ' सुख, मरते-जीते,
इसी को कहते रहे
जिन्दगी।
सामने खडी थी
उस दिन जब जिन्दगी
बडी प्यारी लगी,
अपनी-सी लगी।
एक उम्र खो गई
बियाबानो की उडती धूल मे,
आँखो मे आँसू थे
मगर
मुसकराती लगी जिन्दगी।
कैसे बताऊँ, तुम्हे
ढलती हुई साँझ का आसमा
लेकर आयेगा
हर दिन, नूतन इन्द्रधनुष
हो रहा है यकी
धीरे-धीरे
कि, मै ही हूँ मेरी जिन्दगी।



खिलता फूल

देखती रही मैं
अपलक
नन्हीं पाँखुरियो वाले
गुलाबी चितवन लिये,
उस फूल को।

मेघ, आकाश, चाँद-तारे
पहाड, नदियाँ और झरने
फीके लगे,
देख कर उस फूल को।

किसी
भोले शिशु-सा कोमल था
सुन्दर, मोहक, पवित्र था
ससार के सारे रग भूली, मै
देखा जब से
खिलते हुए उस फूल को।



विसर्गतियाँ

आसमाँ नही था
उडने को
मगर
जमीं तो थी,
पाँव रखने को।
आज
आसमा मिला उडने को
तो देखा
जमीं नहीं थी
पाँव रखने को।



कोई बार-बार कह जाये

हवा ऐसी चले, लहरा मे अजब हलचल मचे,
साथ उनक बहने से, कैसे मन आज बचे।

जहाँ तक नजरें जाय पानी ही पानी दिखे,
ऊपर से, रग-ढग, बदले-बदले स लग।

तरल उर्मियाँ कहती, सिसकते स्वरा को विराम दे
वापस कभी ये मञ्जर, नयनो को मिले ना मिले।

कैसे अपन मन को कहूँ, कि अब घर लौट चले,
हँस देता मन कि चलो हवाओ के साथ उड चले।

कहो ता, कुछ दर ठहर कर मन ही मन गुनगुना ले,
बँध गये पग लहरो के, घुँघरू बजे, तो कैसे बज।

हवा एसी चले लहरा मे अजब हलचल मचे
देखती रहूँ सौदर्य सुधा, पर कोई बार-बार दिखाये।



क्यो रूठी है नीद, हमसे

नींद अजनबी हो गई है
हमसे, मगर
बेचैन
अब, होते नहीं हम।
पलका के नीचे बैठा मन
देखता है
अक्षर-अक्षर झरत हुए
जो
मनोभाव कहेगे।
रगो के मोहक ससार मे खो जाता है,
जो कभी
कैनवास पर उतरेंगे।
आँखो को बन्द कर
सोने की झूठी कोशिश, अब
करते नहीं, हम,
खिडकी से झाँक कर
आकाश से बाते करते हैं।
अपने
अनजान अन्तर को खोजते है, कि
क्यो रूठ गई
नींद हमसे
क्यूँ जाग-जाग कर
सपने देखत हे,
कभी नींद से ही पूछेगे।
नीद, अजनबी हो गई है, मगर
बेचैन, होते नही अब हम।
क्यो रूठी है नीद हमसे।



सुन्दर-असुन्दर

कैसे कहूँ असुन्दर?
सुन्दरतम यह जीवन मेरा।

जलते मरुस्थल मे
श्रांत हो जाते थे कदम
और हो जाते थे
प्यासे अधर, तब
मन की निर्झरणी से बहे,
कुछ गीत मधुर-मन्दिर।

था, वो
बनजारो-सा जीवन
अनजान पथ पर चल पडे हम
हो कर निडर जब,
बनती गई
हर डगर बसेरा।

असफलताओ के बीहड वन
पत्ते-सा काँपता था मन,
तब खोजती थी मे
आनन्द के कुछ क्षण
उडते हुए ज्यो
सुनहरे घन।

निर्मम हवाओ से
बुझ रहे थे जब
जलते हुए चिराग, रो कर
तम से लडने, तब
जल उठी अन्तर म,
एक बाती हँसकर।
कैसे कहूँ असुन्दर?
सुन्दरतम यह जीवन मेरा।



बुझता नही दिया

धूल उडाते
कहर ढाते,
तूफाना क बवण्डर
बढे चले जा रह,
जीवन के आर-पार
ये कैसी लो जल रही
ये कोन तेल डाल रहा,
कि, बुझता नहीं दिया।

एक के बाद एक
मुसीबतो के पहाड
रोक रहे
बढते हुए, मुस्कुराते हुए, कारवाँ
ये किसका हाथ मिला,
ये कौन साथ हुआ
कि, रुकते नही, कदम साथिया।

उफनता सिन्धु
क्रोध मे
मदहोश लहरें, बार-बार
खो रही शोर मे
ये कौन नाव खे रहा?
ये कौन गीत गा रहा?
कि, डरता नही जिया।



कुछ भी कहे दुनिया

अपने थे जो चेहरे
बस गये है देश-विदेशा मे जाकर,
बेजान दीवारा का घर
अब,
नीलाम करे दुनिया, तो क्या?
थोडे-से खुशियो के पल
सजाये थे
जिन्दगी मे —
उनसे भी, अगर
जलती है दुनिया, तो क्या।
बहुत चले है
चिलचिलाती धूप मे
जलते रेगिस्तानो को
पार करने को कहे दुनिया, तो क्या?
सुन कर
किसी का दु ख
हँस देती हे दुनिया।
चल रहा है जब तक
साँसो का काफिला
कुछ भी कहे दुनिया तो क्या?
हमे चलना हे
अपने बनाये रास्तो पर
रास न आये ये मञ्जर
दुनिया को, तो क्या?



कहाँ ढूँढूँ

जल रहा है आसमान,
जल रही है धरा।
छाँव नही, कहीं
आतप मे जल रहा है
पल-पल जीवन, तन औ' मन
कहाँ ढूँढूँ, जल भर लाते घन?
दुबके बैठे
खग कोटरो मे
गीत घुट रहे कण्ठो मे,
निर्निमेष ताकते
नभ की ओर, भोले नयन
कहाँ ढूँढूँ, जल भरे घन?
तड-तालाब सूखे
सूखे नदी, निर्झर,
कही नहीं सगीत-लहरियो की गूँज,
गमगीन लगते खेत-खलिहान,
वन 'औ' उपवन,
कहाँ ढूँढूँ, जल भरे घन?
तप्त ससार मे
बन्धक हुई
कल्पनाओ की उडती पाँखे
हृदय आहत हुआ —
सूखा, सागर-सा लहराता ये मन,
कहाँ ढूँढूँ, जल भरे घन?



सागर का विश्वासघात

शान्त गम्भीर कहलाने वाले
ओ सागर विशाल।
क्यो उफन पडे हो
क्रोध से
कि, नीला गहराता रग तुम्हारा,
फेनिल झागो से दूधिया गया।

घाव
हृदय के छेडे किसने,
किसने कहर ढाया तुम पर?
कब से झेल रहे हो
झझावातो को अपने मे
उद्वेलित हो उठा अन्तर आज
कि अपनी सीमा भी भूल गया।



क्यो रहे घन
पीछे तुम से?
ताण्डव नर्तन कर
दे रहे निमत्रण प्रलय को
क्रूर कोलाहल मे
बिजलियो की चकाचौध मे
यह कैसा निर्मम खेल
जो
मेरे मन को दहला गया।

पागल होकर लहरें भी
उछल रही
नभ को छूती-सी
सुन्दर रेतीला वो तट तुम्हारा,
तुम मे ही डूब गया।

अब
क्या आकर बैठूँगी मैं
पास तुम्हारे
लेकर मन की उथल-पुथल।

ओ मेरे
सागर विशाल
तुम्हारा यह विश्वासघात
हमे दु खी कर गया।

वो घरवाली

बडे प्यार से
लीप-पात कर
माटी के उस चूल्ह का,
झोपडे के आगे
बैठी-बैठी
खाना बनाती है, रोज
वो घरवाली।
आज
बरसात मे भीग गया
माटी का वो चूल्हा
कैसे खाना बने?
क्योकि —
नहीं जलेगा चूल्हा
सोच रही, उदास-सी
वो घरवाली।



क्या करें?

क्या करें, कही मन नही लगता,
कुछ भी ता अच्छा नही लगता।
य धूप-छाँव
बादल बरसते
पँख हवा के भीगे-भीगे
मन्दिर म बजते घण्टे
पारखी बेठे कगूरे
उन्मुक्त गगन क रग
य घर ये दुनिया
ये चाँद सितारे
फूला के पौधे सींचे-सींचे
कुछ भी तो अच्छा नहीं लगता।
क्या करें? कहीं मन नहीं लगता।
मन जो कहे
पन्ना पर लिख दे,
इन्द्रधनुष के रग बिखर
कैनवास पर
आडे-तिरछे
फिर भी, ता
वह बचता हैं
यादा का समन्दर उमडता हैं
तब
कुछ भी ता अच्छा नहीं लगता।



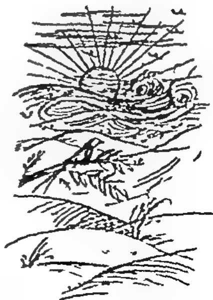
मजबूर पथिक

सोचा भी नहीं था
कि, आयेगा एक दिन,
मौसम वीराना।
उड जायेगे पञ्छी
किसी दूर देश
दाने पानी की तलाश मे,
छोड कर बरसो पुराना बसेरा।
फूल-पात पतझर मे झरे,
झरे अमलतास, गुलमोहर, पलाश।
बिन पानी सूखे ताल तलैया,
अब इधर क्यो आयेगा,
भूला भटका कोई बटोही, कि
उजड गया, वो
पेडो का घना बसेरा।
सूनी-सूनी आँखो से
देखा करेगा तोता-मैना का वो जोडा,
थकाहारा भूली-बिसरी यादो मे खोया
ढूँढा करेगा
वक्त बिताने का बहाना।
पखो मे
वो पुलक कहाँ, अब?
जो नाप सके पथ की दूरी
टूटे सपनो का बोझ ढो कर
उम्र का यह मोड हुआ, लो,
आज
पथिक की मजबूरी
कब सोचा था, कि
इतना तनहा होगा
इस मौसम का ये बहाना।



उस किशोर की व्यथा

हू-ब-हू
वही लहरें उठती है, रोज
सागर की विशाल जलराशि मे
वही सूरज उगता है
वही चाँद-तारे
उगते हैं रोज।
मगर
मेरे अन्दर क्यूँ जन्मते है,
हर रोज नये खयाल?
एक कोयल
मधुर कूकती है
सपने ताने-बाने बुनते है।
मैं।
जगल मे खिला फूल हूँ
जिसे, वीराने मे मुरझाना है।
मैं।
मरुस्थल मे उगा कोमल पौधा हूँ
जिसे, बिन पानी मर जाना है।
क्या करूँ?
इन खयालो का।
कैसे गाऊँ
कोयल की कूक पर बनते गीत?
कौन सुलझाय
सपनो की भूलभुलैया
कि कोई
मसीहा बन
इधर आता नहीं।



समाधान

शायद
उस दिन, तुम
बात को ठीक से बता न पाये,
या फिर
मैंने ही सुना न हो,
सुना भी हो तो समझा न हो।
पिछले कई वर्षों मे
वो बात
मेरे जेहन मे कई बार आई
कभी मुझे लगा, कि
मे,
उस बात पर
गौर करना नहीं चाहता
और, सिर को धीरे से झटक कर
उस बात से
भागना चाहता हूँ,
लेकिन, आज
उस बात को कहो, तुम
एक बार फिर से
शायद
वही बात करे
हमारी उलझनो का समाधान।



जागो, हे! जागो

सोई-सोई
अलसाई-सी
कुहरे मे डूबी भार जो
छेडा ये रगो का राग किसने
जाग उठी ले अँगडाई
कुहरे मे डूबी भार।
ज्याति निर्झर
झरने लगा जब
छन-छन कर पेडो से
पाँवा मे बाँध पेजनियाँ
किरण उतरीं धरती पर
फूलो का मकरन्द उडा
महकी दसा-दिशाये।
ओझल थीं, जो लहरें
अब तक
तम के झीने आँचल मे
स्वर्ण-धूलि सा बिखरा सूरज
लहरो की धुन पर मचल कर
मुसकरा दी उजली दिशाएँ।
थकित नयन
साये-सोये थे,
बीत तम के अशुभ सपना-से
चकित हुए
जाग प्यारी
देख किरण दिवाकर रग उजाले
ये कैसा उषा काल हो रहा?
आज हृदय प्राणा म
जागा है जग।
जाग चुकी समस्त दिशायें।



तब तुम देख लेना

ओ मेरे साथी।
तुम ये ना समझ लेना
कि, ये दु ख-दर्द, य पोडा
जो कुछ अपना है
सब कुछ लेकर जायेगे,
खाली हाथ,
हम, रह जायेगे।
मानता हूँ
कि, ये समय बडा दु खदायी है,
अजीब-सी बेबसी है।
और, जीवट
धीरे-धीरे चुक रहा है
मगर,
यह भी सच है
कि, ये जिन्दगी
और जिन्दगी को जीने की तमन्नाये
टकरायेगी, जब
दर्द से
तुम देख लेना, तब
बरसती, बरसातो को
जलकणा से भरी हुई अँजुरियो को,
जीवन के प्रति निष्ठा से
जगमगाती आँखा को
ओ, मेरे साथी, तुम
यूँ ना समझ लेना, कि
यही जीवन है।

